प्रथम अध्याय

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल का व्यक्तित्व

एवं कृतित्व

प्रथम अध्याय

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

१ डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल नाटककार, अभिनेता, रंगकर्मी और रंगशिल्पी तो दूसरी ओर उपन्यासकार, कहानीकार, जीवनीकार तथा समीक्षक लाल बहुमुखी प्रतिभा के धनी है । नाटक लिखा नहीं जाता, रचा जाता है । नाटक की स्थापना करनेवाले लाल ने हिन्दी नाटक के उस युग को ही बदल डाला जहाँ पर नाटक का अर्थ उपन्यास और कहानी की तरह केवल लिखना रह गया था । नाटक दृश्य काव्य है परंतु वह रंगमंच और अभिनेता का अपने अर्थ को ही मानों खो चुका था । लाल तो एक ऐसे योध्दा थे, जिन्होंने अपने जीवन में हार को कभी स्वीकार नहीं किया । निरन्तर कठिनाइयों एवं संघर्षों के यज्ञ में तपकर ये रंगकर्मी से रंगयोगी की स्थिति में आकर खडे रहनेवाले नाटयकर्मी एवं रंगदर्शी नाटककार बने है ।

१.१ व्यक्तित्व

१.१.१ जीवनवृत्त -

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल का जन्म उत्तरप्रदेश में जिला बस्ती के जलालपुर गाँव में ४ मार्च, १९२७ को हुआ । उस दिन आयी अप्रत्यशित वर्षा और आँधी ने संघर्षमय जीवन का प्रथम मंत्र कानों में फूँक दिया और दादी माँ ने नाम रखा छोडा "झकडी" जलालपुर वह सुंदर श्यामला भूमि है, जिसमें - "कुआनो" और "मनोरमा" जैसी नदियों की कल-कल निनाद करता पानी हमेशा अपने यौवन का परिचय देता रहता तो दुसरी ओर श्यामला हरियाली मन को मोह लेती, तीसरी ओर गाँव के उस परिवेश में बचपन में जब आँख खोली जहाँ बहुरूपियाँ, नोटंकी, बिदेसिया, सफेदा कठघोडक और रामलीला तथा कृष्णलीला आदि

लोकमंचीय नाटयप्रकार कानों में लोरी के माध्यम से अज्ञात रूप से नाटय संस्कार हृदय पर अंकित करने लगे । प्रकृति इनकी सहचरी बनी गाँव के खेतों में परिचय करनेवाला किसान और मजदूर का पसीना कठोर परिश्रम के पाठ सिखाने लगा तो मनोरमा की लहरों में विरूद्द दिशा में तैरने की क्रियाने सारे समाज के विरूद्द अकेले खडे रहने का साहस दिया । इलाचन्द्र जोशी ने कहा है - "लाल का नाटकीय बोध जितना ही सूक्ष्म है उतना सहज भी लगता है जैसे छुटपन से ही उन्होंने जीवन को एक जन्मजात नाटककार की दृष्टि से देखा है, जीवन के सुख और दु द्वंद्व और संघर्ष, तडप और पुलक, फूल और शूल से भरे प्रत्येक रूप और दृश्य को उन्होंने बारी-बारी मुग्ध और विस्मित आँखों से परखा है ।"[१] कायस्थ होते हुए भी प्रेमचन्द की तरह कायस्थी जीवन से एक गहरी ऊब और भूमिपुत्र कुर्मियो के प्रति एक गहरा आकर्षण उनके मन-मस्तिष्क पर छाया रहा । शहरी जीवन में रहकर भी अन्त तक देहात को अपने भीतर संजोए रखा । हिंदू परिवार में जन्म और मुल्ला-मौलवी द्वारा लक्ष्मीनारायण नाम संस्करण ने सर्वधर्म समभाव से भर दिया । ये वे सभी बचपन के संस्कार थे जो हिन्दी नाटय-जगत के इस नाटयकर्मी की प्रतिभा का गढ़ रहे थे ।

१:१:२ <u>माता - पिता</u>

डॉ. लाल के पिता का नाम श्री शिवसेवक लाल तथा माँ का मूँगामोती था । अपने पिता की ये दूसरी संतान और मझले पुत्र थे । उनके बडे भाई का नाम बलदेवलाल तथा छोटे भाई का नाम कमला लाल था । श्यामा औरसावित्री दो बहने थी । माँ बडी ही धार्मिक प्रवृत्ति की, सीधी-साधी, सरल महिला थी । और भक्ति के संस्कार लाल को मूंगा देवी से प्राप्त हुए ।

---

१. इलाचन्द्र जोशी - मेरा हमदम मेरा दोस्त, पृष्ठ-७४.

पिता सेवकलाल काल पटवारी थे । पारिवारिक बोझ से दबे होते के कारण आर्थिक संकटों से ग्रस्त थे । परिणाम स्वरूप "झकडी" का जन्म कोई विशेष प्रसन्नता लेकर घर नहीं आया । झकडी के बडे भाई बलदेवप्रसाद लाल आयु में लाल से दस वर्ष बडे थे । और हायस्कूल पास करके नौकरी में लग गए ।

१:१:३ शिक्षा - दीक्षा

लाल के बडे भाई बलदेवप्रसाद अध्ययन हेतु ग्राम बहादुरपुर के प्राइमरी स्कूल में पढ़ने जाते । जब से जिज्ञासावश उन्हीं के पीछे-पीछे छिपकर जाते और एक दिन प्रधानाध्यापक भोलुराम ने इन्हे पकड़ ही लिया, तब से विद्या-संस्कार का आरंभ हुआ । प्राइमरी शिक्षा पूर्ण कर पिपरा गौतम के मिडल स्कूल में प्रवेश लिया । ऐग्लो हाईस्कूल बस्ती में कक्षा आठ पास कर यहीं पर स्थित संस्केरिया कालिज से सन १९४६ में इण्टर पास किया । पिता शिवसेवक लाल, जरा भी आगे पढ़ाने के इच्छुक नहीं थे । लेकिन आगे पढ़ने की लालसा रहरहकर हिलोरे भर रही थी मन में ठाव लिया कि आगे बी.ए. की शिक्षा इलाहाबाद विश्व-विद्यालय से ही करेंगे । अत: घर में किसी को भी बताए बीना यह कर्मठ अन्जान राहों तथा संघर्षों से जूझने के लिए इलाहाबाद पहुँच गया ।

लाल की शिक्षा पाते समय उन्हें बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । वे जब उच्च-शिक्षा पाने के लिए इलाहाबाद गये तो उनके पहुचने के पहले ही विश्वविद्यालय का प्रवेश बन्द हो चुका था अत: किसी भी हालत में वाइस-चान्सेलर श्री. अमरनाथ झा से भेट तो करनी चाहिए थी । कई दिनों के चक्करों और संघर्षों के बाद जब भेट हुई तो भी झा साहब का उत्तर आया कि - "यह कोई समय है एडमीशन का, पता है एडमीशन कब के समाप्त हो गए हैं। और तुम कौनसे सुरखाब के पर लगे है जो इतने विलम्ब के बावजूद प्रवेश दिया

जावे ।"[१] लाल श्री झा साहब को उत्तर दिया -

" सर मौका आने पर यह दिखाया जा सकता है कि मुझमें कौन से सुरखाब के पर लगे हुए है ।"[२]

इस उत्तर में श्री. झा साहब को प्रवेश देने के लिए मजबूर कर दिया । फिर एक के बाद एक सुरखाब के पर निकलने लगे एक दिन ऐसा भी आया जब कि डॉ. झा साहब के ही मुख्य अतिथि पद पर 'ताजमहल के आँसू' के विद्यार्थी नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल की खोज हुई तो लाल ने बताया कि -- "सर मैं वही हुँ जिसको आपने एक दिन कहा था कि तुममें ऐसे कौनसे सुरखाब के पर लगे है जिससे विश्वविद्यालय में प्रवेश दिया जावे । सर यह सुरखाब का एक पंख है ।"[३] डॉ. झा को पुरानी बात याद आयी । डॉ. झा ने उन्हें गले लगा लिया । इस संघर्ष-यात्रा में दुर्भाग्य से बी.ए. तृतीय श्रेणी में ही पास कर सके । सन १९५० में हिंदी विषय के साथ एम्.ए. किया परंतु उन्हें एम्.ए. में प्रथमश्रेणी नहीं मिली । सन १९५२ में "हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास" विषयपर इसी विश्वविद्यालय से डी.फिल की उपाधि प्राप्त की ।

१.१.४ पारिवारिक जीवन

लाल और आरती लाल : बाल-विवाह ग्रामीण सभ्यता का और विशेष तौर पर उस युग का एक विशिष्ट कुरिवाज था जिसका शिकार लाल को भी होना पड़ा कक्षा आठ पास करने के बाद केवल १६ वर्ष की आयु में ही

---

1 शीला झुनझुनवाला - लक्ष्मीनारायण लाल : व्यक्तित्व एवं साहित्यकार,- पृष्ठ- १३.

2 वहीं - पृष्ठ-१३.

3 वहीं - पृष्ठ-१५.

ग्राम फरीदपुर जिला फैजाबाद राजबहादुर की दुसरी पुत्री आरती के साथ लाल का विवाह हो गया । सुभाष भाटिया कहते हैं - "देखो मिलों आरती से यह मेरी वह पत्नी है, जिनसे मेरी शादी सोलह साल की उम्र में हुई थी ।"[१] दोनो इस विवाह बन्धन से अबोध एवं अन्जान थे । लम्बे समय तक जिसके परिणाम श्रीमती आरती लाल को भुगतने पडे । लेकिन एक आदर्श भारतीय नारी की भाँति आरतीजी ने न तो लाल से कभी शिकायत की, न उनके मार्ग की बाधा ही बनी बल्किं उनके मार्ग की प्रत्येक दीवार को टूट लाल के जीवन की आरती ही बनी रहीं ।

१.१.५ आदर्श पिता

लाल की तीन सन्तानें हैं । बड़े पुत्र आनंद वर्धन, पुत्री सरोजिनी तथा छोटे पुत्र अजयलाल (लल्ला) । अपने संतानों के लाल स्नेहिल पिता बन गये । उनके न केवल विकास का ध्यान रखा, सन्तानों की बडी उम्र होनेपर वे उनके मित्र बने । अजय मंदबुध्दि का होने के कारण सबसे अधिक स्नेह अजय पर ही टूट पडा । लाल अजय के लिए निरन्तर चिंतित भी रहें । उनकी इस चिन्ता का जिक्र करते हुए अमृता प्रितम कहती है - "एक उनको फिकर तो थी अपने लडके की उसको बहुत उन्होंने झेला है, परन्तु उस लडके को कभी उन्होंने किस सहजता से अपने हाथों में ले लिया, यह वहीं ले सकते है ।"[२] परन्तु वास्तविकता यह है कि इसे उन्होंने केवल भोगा और झेला ही नहीं, अपितु जिया है । तीसरी सन्तान जो कि अजय से बडी है, पुत्री सरोजिनी लाल जिसे लाल ने भरसक स्नेह दिया । विशेषत: नाटयजगत में तो वे लाल की सहभागिनी रही है ।

---

(१) सुभाष भाटिया - लक्ष्मीनारायण लाल का रंगदर्शन, - पृष्ठ-२०.

(२) वहीं - पृष्ठ-२०.

१.१.६ लक्ष्मीनारायण लाल का कार्यक्षेत्र

लाल ने डी.फिल. की उपाधि प्राप्त करने के बाद सन १९५३ में एम्.एम्. कॉलिज चन्दोसी में अध्यापन का कार्य शुरु किया । एक वर्ष यहाँ अध्यापन किया, यहीं पर नाटक और अभिनय के अवसर प्राप्त हुए । सन १९५५ में सी.एम्.पी. कॉलेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हिंदी विभागाध्यक्ष के रूप में नियुक्त हुए । सन १९५६ में आकाशवाणी के डी.जी. और नाटककार जगदीशचन्द्र माथुर और सुमित्रानंदन पन्त के आग्रह से उन्हें लखनउ रेडिओ स्टेशनपर "ड्रामा प्रोडयुसर" का पद मिला । १९५८ में इन्होंने "नाटयकेंद्र" खोल दिया, जिसके श्री पुरुषोतमदास टण्डन अध्यक्ष बने तथा कवि पन्त तथा नाटककार उपेंद्रनाथ "अश्क" जैसे महानुभाव इस केंद्र के सदस्य बन गये ।

इस नाटयकेंद्र के माध्यम से उन्होंने नाटक और रंगमंच एक करने का भरसक प्रयास किया । सन १९६४ में लाल इलाहाबाद छोडकर दिल्ली आ गए । उन्होंने भारत सरकार के प्रतिनिधि के रूप में बुखारेस्ट की अन्तरराष्ट्रीय नाटय-गोष्ठी में भारत का प्रतिनिधित्व किया । इस यात्रा के दौरान ग्रीक, इटली, फ्रान्स तथा ब्रिटेन के थियेटरों को प्रत्यक्ष जानने का अनुभव भी प्राप्त किया । लौटकर वे दिल्ली विश्वविद्यालय में व्याख्याता के रूप में नियुक्त हुए । यहाँपर ४ मार्च, १९६७ को अपने जन्मदिन की ४० वी वर्षगाँठ के दिन "संवाद" नायक नाटय संस्था का आरम्भ किया । यहींपर "नैशनल स्कूल आफ ड्रामा" के कई स्नातकों ने अपनी प्रतिभा को चेतन रूप दिया । सन १९७० में लालने प्राध्यापक पद का त्याग कर दिया और अपने घर आए घर आकर बडे दृढ आत्मविश्वास से घर के लोगों को अपना निर्णय सुनाया - " तुम लोग घबराओ मत, तुम लोगों को कोई परेशानी नहीं होगी हम लोग पहले से अच्छी तरह रहेंगे । नौकरी छोडने का निर्णय बदलने की बात कर मुझे कमजोर मत बनाना ।" [1]

---

१. शीला झुनझुनवाला - लक्ष्मीनारायण लाल : व्यक्तित्व एवं - साहित्यकार पृष्ठ-१०.

कुछ दिनों तक "नेशनल बुक ऑफ इंडिया" के सम्पादक के रूप में कार्य करने लगे । और फिर इस स्थान का भी त्याग कर अठराह घण्टे कलम की मजदूरी करनेवाले "कलम के मजदूर" बने । उन्होंने यह पेशा "स्वधर्म" के रूप में स्वीकार किया। उन्हें पुरा विश्वास था अपने स्वधर्मपर अगाध श्रध्दा थी अपने कलम पर, पुरुषार्थ पर अपने श्रम पर । लेखन की इनका विश्राम बना, साधन बना । यह है इनके "श्रम" से "आश्रम" तक की यात्रा । वे कहते हैं -

"एक है श्रम जो शरीर से होता है, दूसरा है परिश्रम जो शरीर और मंद-बुध्दि से होता है और एक है "आश्रम" जहाँ "श्रम" और "परिश्रम" दोनों खत्म हो जाते हैं - यह आत्मा से जुडकर होता है ।" [१]

१.१.७ विदेश यात्राएँ

लक्ष्मीनारायणलाल ने अपने जीवन में तीन विदेश यात्राएँ की एक त्रिदेश यात्रा जो कि १९६४ में उन्होंने बुखारेस्ट की इसके साथ ही १९८६ में केम्ब्रिज, आक्सफर्ड और पेरिस की विभिन्न संस्थाओं में तथा १९८७ में "टोरेन्टो" विश्वविद्यालय में भाषण देने के हेतु आमंन्त्रित किए गए । इन विभिन्न विदेश-यात्राओं ने इनकी रंगदृष्टि को विशाल ही नहीं किया, अपितु पाश्चात्य नाटक और रंगमंच के सामने अपने नाट्य और रंगभूमि की विशिष्टता का अहसास भी हुआ जिसने रंगमंच से रंगभूमि पर आने की विराट दृष्टि दी ।

---

१. ऋतुपर्णा शर्मा - लाल एक पुरुष वृक्ष,- पृष्ठ-१०८.

१.१.८ पुरस्कार

लाल अपने जीवन में भिन्न - भिन्न प्रसंगों पर भिन्न-भिन्न पुरस्कार से सम्मानित होते रहे --

१९६७ : "रातरानी" नाटक पर अखिल भारतीय कालीदास पुरस्कार ।

१९७० : "करफ्यू" नाटकपर अखिल भारतीय कालीदास पुरस्कार ।

१९७७ : "उत्तर भारत संगीत नाटक" अकादमी पुरस्कार ।

१९७७ : हिंदी के प्रमुख नाटककार के लिए "राष्ट्रीय संगीत नाटक" अकादमी पुरस्कार ।

१९७९ : हिंदी साहित्य क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान के लिए साहित्य कला परिषद दिल्ली द्वारा पुरस्कृत हुए ।

१९८७ : "गली अनार कली" उपन्यासपर "हिन्दी अकादमी दिल्ली" द्वारा पुरस्कृत ।

१९८८ : भारतीय नाट्य संघ द्वारा मरणोपरान्त पुरस्कार दिया गया ।

१.१.२ व्यक्तित्व विश्लेषण

लाल ने जयप्रकाश का बाहय व्यक्तित्व लिखते समय लिखा है - "पुरा भरा शरीर । कहीं से किसी भी तरह कुंठित या संकुचित नहीं । खुला रंग सही अर्थों में सुडौल पुरुष । भरा हुआ गोल मुख । मजबुत जबडे जो दृढ स्वभाव के सूचक है । अर्धचन्द्रकार ठुड्डी जो उनकी बौध्दिक जिज्ञासा का संकेत करती हैं ।" १ लाल ने इस व्यक्तित्व में अपनी ही झलक दे दी है । यह सारा शारीरिक व्यक्तित्व लाल पर पुरा उतरता है । लाल के चेहरे पर कभी भी कहीं भी कुण्ठा या चिंता की रेखा उभरती नहीं देती ।

---

१) लक्ष्मीनारायण लाल - जयप्रकाश, पृष्ठ-३.

सुभाष भाटियाजी लाल के व्यक्तित्व के बारे में लिखते हैं -

"वे सदा हँसते हुए दिखायी देते उनमें कठोरता का आभास देखनेवाले वास्तव में न तो उन्हें देख पाए थे न जान पाए थे, न पहचान पाए थे। जयप्रकाश जी के चरित्र में से अनेक बाते लाल में झलकती दिखायी देती है। जे.पी.की तरह वे भी पहनने खाने के बेहद शौकीन थे।" [१] पहनावे में लाल ने धोती कुर्ते से लेकर सूटबूट तक सभी कुछ पहना। शुध्द भारतीय से लेकर पाश्चात्य तक। यदि आधुनिक रहे तो पूरी तरह वे आधुनिक बनकर जिए। ज्यादा तर उन्हें वहीं पसन्द होता जिसमें आसानी से रहे। खाते-पीने में भी उन्होंने किसी भी प्रकार का कभी परहेज नहीं किया। चाहे वह शुध्द शाकाहारी हो या माँसाहारी। सुभाष भाटिया के शब्दों में - "मछली उनका सबसे प्रिय खुराक थी। समय आने पर स्वपाकी भी बन जाते थे। शुध्द स्वच्छ एवं ढंग से बना हुआ हो यह उनकी अनिवार्य शर्त थी।" [२]

१.१.१० गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित

डॉ. लाल पर यदि सबसे अधिक किसी का प्रभाव झलकता है तो वह है म. गांधी की कर्मठता, भक्ति और राष्ट्रीयता का प्रभाव। भाटिया कहते हैं कि - "वे अक्सर कहते थे कि इस राष्ट्र की नस नस की, इस राष्ट्र का राष्ट्रीयता को यदि किसी ने पकड़ा है तो वह गाँधी ही था।" [3] उनमें निहित अपने धर्म और ईश्वर के प्रति अटूट श्रध्दा और विश्वास राष्ट्र की मिट्टी से लगाव, आडम्बरहीन जीवन, औपचारिकताओं से दूर देहातीपन, सत्य बात

---

१) सुभाष भाटिया - लक्ष्मीनारायणलाल का रंग-दर्शन - पृष्ठ२३.

२) वहीं पृष्ठ-२३.

३) वहीं पृष्ठ-२४.

मुँहपर कह देने की क्षमता, किसी भी कार्य को अर्थात पैखाना तक धो देने का संकोच नहीं, भूल को स्वीकार कर लेने की क्षमता आदि कार्यों में गांधी के वे सारे शुध्द भारतीय उपकरण ही इस देश को, इस राष्ट्र को इसकी राष्ट्रीयता से जोड सकेंगे । उन्हें दृढ विश्वास था कि भारत को गांधी की ओर वापस मुडना होगा ।

१.१.११ स्वाभिमानी व्यक्तित्व

लाल के व्यक्तित्व की सबसे बडी विशेषता उनका स्वाभिमानी व्यक्तित्व रहा है । जिसे लोगों ने अहंमवादी कहकर आलोचना की थी । डॉ. लाल असंयत, स्वकेंद्रित और उग्रस्वभाव के है, उन्होंने कभी किसी मर्यादा या अनुशासन को स्वीकार नहीं किया जो स्वकेन्द्रित होगा, वह पद और स्थान से चिपक जाएगा । इस प्रकृति के व्यक्ति को अपनी पहचान तो आप मिटा देनी होगी । वह कल्पना में भी उग्र या उध्दत होनी की बात सोच नहीं सकता ।

भाटिया के शब्दों में " वास्तविकता तो यह है कि अहंकारी तो वह होता है जिसका कभी सृजन नहीं होता । लाल स्वाभिमानी आवश्य थे वे किसी की लल्लो-चप्पों से माननेवाले नहीं थे । जिसके बारें में जो कुछ भी लगता उसे मुँह पर कह देनेवाले थे । यह भी नहीं कि कभी समय आएगा तो बात की जाए, नहीं उसी उक्त कह देते । ऐसा वही व्यक्ति कर सकता है जो सच्चा हो या निर्भिक ।"[१] जो लोग भी उनके साथ लम्बे समय तक रहे उनके साथ काम किया उन्होंने उनके इस गुण को उनका अहंम नहीं किंतु उनका स्वाभिमान ही माना हैं ।

---

१) सुभाष भाटिया - लक्ष्मीनारायण लाल का रंग-दर्शन, पृष्ठ-२४.

१.१.१२ ग्रामीणा धरती की परम्परा एवं माटी से जुडे एक पुरुष वृक्ष -

यदि उनकी किसी से तुलना करनी हो या उन्हें कोई उपमा देनी है तो उन्हीं ग्रामीणा खेतों से ही देनी होगी । वे अत्यंत सहज थे और उनके भीतर किसी भी प्रकार की गाँठ नहीं थी । अगर लाल में कोई गाँठ थी भी सही तो वह भी ईख की गाँठ जो ईख के बाहर कठोर भाग में रहती हैं । फिर भी उस गाँठ के बिना ईख की कोई कीमत नहीं । वह गाँठ तो इसलिए होती है । ताकि ईख के भीतर के सहज रस को सुरक्षित रख सके । एक काम तो यह होता हैं गाँठ का, दूसरा काम यह है कि उस गाँठ से फिर से नया सृजन हो सके तो लाल के भीतर भी सहजता का एक रस था जो भारतीय नाटक का चरमबिंदू होता है और एक सृजन था । जो उन्हें अनेक विध-विधाओं में फैलने का अवसर देता था । अत: लाल ऊपर से कठोर और भीतर से कोमल नारियल और अखरोट की तरह नहीं थे, अपितु वे तो रस की रस की सुरक्षा करनेवाले एवं नव सृजन की जन्मदात्री ईख की गाँठ की तरह थे ताकि रस कहीं छलके नहीं, सृजन कहीं टूटे नहीं ।

१.१.१३ लाल का देहातीपन

लाल इलाहाबाद, दिल्ली, विदेशों में या विश्वविद्यालयों जैसे शहरी परिवेश में रहे थे । उनकी इस लम्बी यात्रा में वे अपनी धरती और विशेष तौर पर उस धरती के संस्कारों से पूरी तरह जुडे रहे । उन्हें अपने कैरियर के लिए अपना गाँव छोडना पडा मगर अपने मिट्टी को छोड़ने का दर्द उन्हें समय-समय पर होता रहा । उनके सामने कैरियर बनाने की समस्या नहीं होती तो वे कभी-भी अपनी मिट्टी को नहीं छोडते अपने गाँव नहीं[3] छोड देते । लाल शहर में रहे मगर शहरी पन महसूस नहीं होने देते । वे साल में चार पाँच बार अपने मिट्टी या अपने गाँव को आते थे । गाँव में कई दिनों तक रहते थे,

और गाँव के लोगो के साथ बडी गहराई से उन्हें मिलते थे । और उनके सुख-दुख में शामिल होते थे । अज्ञेयजी लिखते हैं - "लाल देहाती थे चाहे शहरी जीवन में थोडा बौखलाए हुए देहाती ।"[१] उन्होंने अपने व्यक्तित्व से देहाती मिट्टी से प्यार किया है । सभ्य नागरिक बनने की इच्छा रखने वाले लाल ने अपने व्यक्तित्व की देहाती मिट्टी को मन भर प्यार किया है । ऋतुपर्णा शर्मा कहती हैं -- "यह अपनी मिट्टी से उगा हुआ पुरुष वृक्ष है मिट्टी गाँव की है.... पर इसकी जडे अपनी ही धरती से रस लेती है । जडे गहरे अंधकार तक जितनी गई है, चली जा रही है, इस वृक्ष का विकास उतना ही ऊपर और निरन्तर होता जा रहा है ।"[२]

१.१.१४ लाल का राजनीतिक चिन्तन

लाल ने राजनीति में कभी सक्रिय हिस्सा नहीं लिया परंतु अपने जीवन का कुछ समय सन १९४७ से लेकर १९७९ तक जयप्रकाश नारायण के साथ अवश्य बीता । यह समय था जब जयप्रकाशजी स्वयं भी देश में फैले भ्रष्टाचार, महंगाई, बेरोजगारी, गरीबी, और भूख से त्राहिमाम हुए राष्ट्र को बचाने के लिए "सर्वोदय विनोबाजी" और पवनार आश्रम तक को छोडकर कूद पडे थे । यह वह समय था जब सत्ता की भ्रष्ट राजनीति ने अपनी सत्ता को टिकाए रखने के लिए तमाम ताकतों का गला घोंटकर आपातकाल के रूप में एक तानाशाह पैदा किया था । लाल हमेशा अपने देश और राष्ट्र की वर्तमान स्थितिपर चिन्तित थे । उनकी चिन्ता भी यही कि यहाँपर सभी लोग राष्ट्र-राष्ट्र की दुहाई देते हैं, पर जब देश ही कही नहीं दिखता तो राष्ट्र और उसकी

---

१) रघुवंश - कृतिकार लक्ष्मीनारायणलाल, पृष्ठ-१६.
२) ऋतुपर्णा शर्मा - लाल एक वृक्ष पुरुष, पृष्ठ-१०८, १०९.

राष्ट्रीयता तो बहुत दूर की बात है । जिसका जिक्र लाल ने अपने साहित्य में स्थान-स्थानपर पर किया है वह कहते हैं --

" वह राजा ही क्या जो सिंहासन से चिपक जाए ।"[1] लाल को राजनीति में दिलचस्पी नहीं थी । वे "आधीरात से सुबह तक" में स्पष्ट करते हुए कहते है कि -- "राजनीति में कभी मेरी कोई दिलचस्पी नहीं थी । मैं तब हमेशा यह मानता रहा कि राजनीति का लक्ष्य ही सत्ता प्राप्त करना है । जहाँ सत्ता की भूख है, वहाँ हिंसा अनिवार्य है । इसलिए दावपेच राजनीति का अस्त्र है । क्योंकि वह विरोधी को परास्त करने के लिए आवश्यक है ।"[2] आधी रात से सुबहतक" इस पुस्तक में आपातकाल का सारा विकराल दृश्यलाल ने भर दिया है । जिसमें सारा देश कारागार में बदल गया था । यह वही २५ जून, १९७५ की आधीरात है जिसकी सुबह भी अन्धकार से परिपूर्ण थी । वहाँ से लेकर जनता द्वारा पुन:स्थापित हुई लोकतांत्रिक शक्ति की सुनहरी सुबह १९७७ तक का इतिहास है ।

लाल ने अपना राजनीतिक चिन्तन और भारतीय राजनीतिक चरित्र अपने ग्रंथ 'निर्मूल वृक्ष का फल' में दिया है । आज की राजनीति की इतनी बिकट समस्या का मूलभूत कारण है कि -- "जब तक राज्य समाज के अधिन था, तब तक राजनीति नही, राजधर्म था, परन्तु जिस समय से राज्य समाजपर हावी हुआ उतनी राजनीति होगी । राजनीतिका एक मात्र लक्ष्य है, शक्ति हासिल करना ।"[3] आज चारों तरफ अधिकार प्राप्ति की होड़ लगी है, परंतु राज-नीतिक अधिकार तब तक उनपर सांस्कृतिक नियंत्रण नहीं, अर्थात आत्मनुशासन

---

१) लक्ष्मीनारायण लाल - एक सत्य हरिशचन्द्र, पृष्ठ-३६.

२) लक्ष्मीनारायण लाल - आधी रात से सुबह तक, पृष्ठ-५.

३) लक्ष्मीनारायण लाल - निर्मल वृक्षा का फल, पृष्ठ-७.

नहीं । कोई भी भौतिक अधिकार केवल भ्रष्टाचार, हिंसा और असन्तोष को ही जन्म देगा । इसी आग को दबाने के लिए शासन द्वारा शक्ति, भय और आतंक का साम्राज्य फैलता है जहाँपर मनुष्य पशु पैदा होता है । लाल का यह भी मत है कि राजनीति के क्षेत्र में भी हम अपने मूल से कट गए हैं । जैसे नाटक के क्षेत्र में हम रंग भूमि से कटकर रंगमंच का दामान थामे है वैसे ही राजनीति के क्षेत्र में भी हम पश्चिम के मंच पर खड़े है । आज हम जिस राज्य और उसकी राजनीति को देख रहे है, वह इंडिया की पश्चिम से उत्पन्न राजनीति है, भारत के लोकतंत्र या जनतंत्र की राजनीति नहीं । उन्हे लगता था कि यहाँ राजनेता, नेता कम और व्यापारी अधिक है, जो केवल अपना लाभ ही अधिक देखता है ।

१.१.१५ लाल दर्शक के रूप में

लाल बहुत अच्छे दर्शक थे, अपने के अलावा हर नाटक को देखने के बाद सुक्ष्मता से निरीक्षण करके उसपर वे बातचीत करते थे । उसकी हर विधा पर शैली पर वे अपना मत प्रकट करते थे । नाटक देखने के लिए वे भागते-भागते आते थे उन्हे सिर्फ सूचित करना पड़ता था । नाटक देखने बाद वे अपने निर्देशक को, अभिनेता, को टेक्नीशियन को मिलते थे, वे हरेक चीज को देखते थे और उनसे बातचीत करते और आलोचनात्मक विवरण उन्हें देते थें ।

१.१.१६ लाल अभिनेता के रूप में

लाल नाटककार होने के साथ-साथ उनकी और एक भूमिका अभिनेता की है । उन्होंने रक्तकमल "सुन्दररस", "यक्षप्रश्न", "व्यक्तिगत" जैसे नाटकों में अभिनेता की भूमिका बड़ी कुशलता से निभाई हुई दिखायी देती है । जिसका

एक मूलभूत कारण यह भी रहा कि नाटक लिखा और छुट्टी पाई यह सद्भाग्य उनका नहीं था । उनके मन में यह प्रश्न उठ सकता था कि यदि नाटक दृश्य न बन सका तो उसकी रचना क्यों ? इस प्रश्न के कारण उन्हें अभिनय मण्डली खडी करनी पडी, स्वयं एक कुशल अभिनेता बने तथा प्रमुख भूमिका निभाई । उन्होंने अभिनय किस कलात्मक अभिव्यक्ति का नाम है यह अभिनेताओं को अपने प्रत्यक्ष अभिनय द्वारा सिखाया, कि बिना आत्मा हृदय और इमानदारी से शरीर को जोड़ देनेपर अभिनेता होना सम्भव नहीं । भाटियाजी इनके बारे में कहते है कि -- "केवल बाल बढा लेना, भीतरी कुण्ठाओं को ढकने के लिए मुखौटा का धारण करना नशीले पदार्थो का सेवन करना अभिनय कला नहीं ।"[१]

स्वयं की अभिनय कला द्वारा अपने-साथ-साथ रसदशा तक दर्शक को ले जाना अभिनय है । अभिनेता लाल को जानने के लिए जैनेन्द्रजी द्वारा दिया गया उदाहरण -- "उनका "व्यक्तिगत" नाटक प्रस्तुत हुआ । मुख्य चरित्र दो ही थे । पुरुष पात्र "मैं" और स्त्री पात्र "वह" । मैं को भूमिका मैं स्वयं लाल सामने है । केवल दो पात्र के बलपर डेढ दो घण्टे तक दर्शक दीर्घाओं को मुग्धभाव से बाँधे रखना आसान काम नहीं । मूल पाठ तो उसके लिए जीवन्त होना ही चाहिए । पर अभिनय तदनुरूप न हुआ तो दर्शक उचट जा सकता है । मुझे विस्मय हुआ कि लाल में इस दिशा की भरपूर दक्षता भी है ।"[२]

डॉ. लाल ने संवाद के माध्यम से ही अभिनय किया ।

---

१) सुभाष भाटिया - लक्ष्मीनारायण लाल का रंगन्दर्शन, पृष्ठ ३६.

२) सं. रघुवंशा - कृतिकार लक्ष्मीनारायणलाल, पृष्ठ १३.

१.१.१७ महाप्रस्थान

लाल का जैसा स्वाभिमानी निर्भिक जीवन रहा उनका वही अटल स्वाभिमान और उनकी निर्भिकता काल के सामने खड़ी रही । उनकी यह महायात्रा उनका महाप्रस्थान भी मानों कि नाटक का एक अंक बनकर रह गया । क्रूरकाल के राक्षसी पन्जे इस महानायक नाटककार, उपन्यासकार, जीवनीकार, एकांकीकार को ग्रास गया । हिन्दी नाटक और हिन्दी जगत का यह सूर्यअस्त हो गया दि. २०.११.८७ शुक्रवार दिन के ११.३० बजे । वह अभिनेता उस महानिर्देशक की आज्ञा से इस रंगमंच की दुनिया को छोडकर परमात्मा की उस रंगभूमी पर चला गया ।

१.२ कृतित्व -

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल कृतित्व में उन्होंने उपन्यास, नाटक, कहानी, एकांकी, जीवनीयाँ लिखी हैं । इसमें उन्होंने राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक राष्ट्रीयता पर अपने विचार प्रकट किये है ।

१.२.१ उपन्यासकार लाल

डॉ. लाल ने कुल मिलाकर १५ उपन्यास लिखे है ।

	उपन्यास	संस्करण
१)	"बया का घोसला और साँप"	१९५३
२)	"धरती की आँखि"	१९५५
३)	"काले फूल का पौधा"	१९५५
४)	"रूपा जीवा"	१९५९
५)	"मन वृन्दावन"	१९७० (द्वि.सं.)

	उपन्यास	संस्करण
६)	"प्रेम एक अपवित्र नदी"	१९७२
७)	"अपना अपना साहस"	१९७३
८)	"बडी चम्पा छोटी चम्पा"	१९७३
९)	"बडके भैया"	१९७३
१०)	"हरा समन्दर-गोपी चन्दर"	१९७४
११)	"श्रृंगार"	१९७५
१२)	"वसन्त की प्रतीक्षा"	१९७५
१३)	"देवीना"	१९७६
१४)	"पुरुषोत्तम"	१९८३
१५)	"गली अनारकली"	१९८५

नाटककार की तरह लाल की उपन्यास की यह यात्रा भी एक सशक्त यात्रा है । नाटक की तरह ही इसमें भी विषयों की लम्बी भरमार, तथा समस्याओं का एक मायाजाल गुँथा हैं । स्त्री-पुरुष सम्बन्ध, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, भ्रष्टनीति, साम्प्रदायिकता, सुबकता, सिसकता ग्रामीण जन-जीवन या वह समस्या शैक्षणिक आदि समस्योंका लेकर उपन्यास लिखे हैं । इन समस्यों-को स्पष्ट करना ही उनके उपन्यास का उद्देश्य है । उनकी नायिका पत्नी होकर भी कभी वफादारी के दायरे में नही रहती । परन्तु प्रेम एक अनुभूति है, प्रेम एक अहसास है इसे लाल अवश्य सिध्द करते है ।

इनके उपन्यासोंका दूसरा रूप है राष्ट्रीय समस्याएँ । इनके प्रति वे इतने सजग एवं जागरूक है कि सभी समस्याओं का पर्दाफाश कर देना चाहते हैं । अपने देश और राष्ट्र से ह्रदयगत प्यार करना तथा देश की राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक समस्याओं से जूझना तो लाल जैसे रचनाकार का ही काम है । इनके उपन्यासों में नागरिक एवं देहाती जीवन की सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक विषमताओं की एक कटूता का आभास मिलता है । परन्तु इन सबसे भी अपनी धरती, मिट्टी और उसके मूल से जुड़ना, ग्रामीण मिट्टी की सुगन्ध को पूर्णत

जोना तथा उसके प्राकृतिक प्रेम का अनुभव करना उनके उपन्यासों की विशेषता रही हैं ।

१.२.२ कहानीकार लाल

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल रचनाकार के रूप में उनका कहानीकार का रूप भी उभकर सामने आता हैं । लाल नाटककार हो उपन्यासकार हो या कहानीकार हो, उनके सृजन का जो सबसे बडा प्राणतत्व है "कथा" यही कथा उनकी "श्रध्दा" है और उनके पात्र विश्वास बनकर सामने आते है । यह "कथा" ही कभी नाटक, कभी उपन्यास, तो कभी कहानी का शिल्प पहनकर नजर आती है । लाल न केवल कहानीकार ही बने अपितु जिस प्रकार उन्होंने नाटक के साथ-साथ नाटयचिन्तन प्रस्तुत किया उसी प्रकार कहानी सृजन के साथ-साथ उसका शिल्प विधान और कथादर्शन भी प्रस्तुत किया । नाटककार तो होते हुए भी उनका शोध प्रबन्ध "हिन्दी कहानियों की शिल्पविधी का विकास" तो कहानी पर ही रहा है । कहानीकार को देखने से पूर्व कहानी का शिल्प क्या है इसे भी देखना चाहते थे । अपने शोध-प्रबन्ध में वे कहानी शिल्प की चर्चा करते हुए लिखते है कि - "किसी भाव को निश्चित रूप देने के लिए जो विधान प्रस्तुत किए जाते है, वही उस कला की शिल्पविधी है । कहानी में यह व्याख्या अनुभूति और लक्ष्य-इन दोनो रूपों में अत्यंत स्पष्ट है । कहानी में जिस तरह अनुभूति उसके तत्वों में ढलती जाती है, वही उसकी टेक्नीक है । दूर एक निश्चित लक्ष्य अथवा एकान्त प्रभाव पूर्ति के लिए कहानी की रचना में विधानात्मक क्रिया उपस्थित करती पडती है, वहीं उसकी शिल्पविधी हैं।" [१] इसीप्रकार अपने ग्रंथ में हिन्दी कहानियों के अध्ययन में उन्नीसवी सताब्दी के उत्तरार्ध से लेकर उन्नीस सौ बासठ तक का अध्ययन प्रस्तुत किया है ।

---

१) लक्ष्मीनारायण लाल -हिंदी कहानियों की शिल्पविधी का विकास, पृष्ठ - ३.

सन १९४९ से लेकर लगातार दस वर्ष तक "साप्ताहिक", "हिन्दुस्तान", "कल्पना", "ज्ञानोदय", "कहानी", "माया", "सुप्रभात", आदि भारत की विविध पत्र - पत्रिकाओं में उनकी कहानियाँ प्रकाशित होती गयी ।

लाल के कहानी संग्रह

		संस्करण
१)	"सुने अंगन रस बरसे"	१९६०
२)	"नाए स्वर : नई रेखाएँ"	१९६२
३)	"एक बूँद जल"	१९६४
४)	"एक और कहानी"	१९६४
५)	"डाकू आए थे"	१९७३
६)	"आनेवाला कल"	१९८७ (मरणोपरान्त)

इन छे प्रकाशित कहानी संग्रहों में कुल मिलाकर ६० कहानियाँ है ।

लाल की कहानियों के इन संग्रहों में निश्चय ही "द्रोपदी", "सुन्दरी", "सरजूतट का पपीटा", "थाना बेलु रगंज", "डाकू आए थे", "डोका दन्त", "आनेवाला कल", तथा "उसकी लडकी", आदि कहानियाँ निश्चय ही स्मरणीय एवं पठनीय हैं । इनकी कहानियों में एक तरफ कथ्य एवं शिल्प में एक नवीनता झलकती नजर आती है, वहाँ दूसरी ओर अवध गाँव की आँचलिकता की लहरा उठती हैं । गाँव का वही लोकजीवन, उसकी भाषा, लोकगीत परम्परा, रीति-रिवाज हर्ष, विषाद घुटन, पीडा, नारी की वेदना और कसक एक-एक करके हमारे सामने आते हैं । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमारे साहित्य में जिस प्रकार लोक जीवन और आंचलिकता उसकी ही लोकबानी में उभरकर आयी हैं, उसकी एक झलक लाल में दृष्टिगत होती है । क्योंकि लाल के लिए ग्रामीण जीवन कोई अलग परिवेश नहीं । लाल की इन कहानियों का आधार "व्यक्ति" और "परिवार" रहा है । और निरंतर एक व्यक्ति की तलाश में रहें है, जिस खोज में वे कही यदि थोडे से दूरे हैं तो कहीं थोडे पूर्ण भी हुए हैं । इसके

साथ-साथ यह बात भी उतनीही सत्य है कि लाल की कहानियाँ आज जाने-माने श्रेष्ठ कहानीकारों की तुलना में इतनी श्रेष्ठ नहीं बन पाई, परन्तु उनकी कहानियों में जो भारतीय जीवन की झलक और ललक पाई जाती है, वह अपने आप में अनूठी है । वे आधुनिक होते हुए भी पश्चिम की उधार ली गई आधुनिकता से कोसों दूर थे । वे लिखते हैं कि - "वस्तुत: किसी देश समाज की आधुनिकता वहीं जीवन चेतना सापेक्ष सत्य है, और इसे वही पा सकता है जो वहाँ से यथार्थ जीवन के साथ ही वहाँ के श्रेष्ठ मानवीय आदर्शों और मूल्यों में जिया हो ।" [१]

१.२.३ जीवनीकार लाल

लाल की हर विधा में उनकी कलम से सृजन कला केवल शिल्प का रूप ही बदलती है, उसके कथ्य और सौंदर्य में कोई अंतर नहीं आता । कई बार उनके उपन्यासों में यदि नाटक सी सुगन्ध और महक आती है तो उनके जीवन चरित्रों में उपन्यास की महक और ताजगी है । जीवन में निहित जीवनी उस कुशल शिल्पी हाथों न केवल अपने पात्र में निहित चरित्र का अवलोकन कर पाता है, अपितु वह चरित्र अमर भी हो सकता हैं । इन जीवन चरित्रों से हम पात्र को जितना अपने समीप पाते हैं उतना ही इनमें से लाल का राजनैतिक दर्शन एवं उनकी सूझ-बूझ का भी परिचय लेते हैं । जीवनीकार लाल द्वारा तीन चरित्र देखने को मिलते हैं ।

१) जयप्रकाश (१९७४)
२) अंधकार में एक प्रकाश जयप्रकाश (१९७७)
३) स्वराज्य और घनशाम दास (१९८७)

---

१) सं. सुरेन्द्र - नई कहानी, पृष्ठ - २१५.

इनमें दो का सम्बन्ध क्रांति नेता लोकनायक जयप्रकाश नारायण के जीवन के साथ है तथा एक स्वतन्त्रता संग्राम में भामाशा की भूमिका निभानेवाले धनवीर धनश्यामदास बिडला का है । इन चरित्रों की सबसे बडी विशेषता यह है कि ये केवल जीवनी ही नहीं, अपितु आधुनिक जीवन काव्य हैं । इतिहास और घटनाओं का न केवल क्रमिक विवरण है किन्तु भावाभिभूत लेखक की इन तीन चरित्रों के प्रति श्रध्दा, भक्ति और विश्वास भी झलकता हैं ।

१.२.४ <u>एकांकीकार लाल</u>

लाल ने अपने नाटयसृजन से हिन्दी नाटय जगत के दारिद्रय को चारों ओर से भरसक प्रयास किया है । जिसके लिए उन्होंने नाटक के विविध रूपों को अपनाया, उनके सम्पूर्ण नाटक जहाँ नाटयकर्मियों के हाथों से रंगमंच को सजाते रहे वहीं व्यावसायिक रंगमंच के साथ-साथ शौकियाँ रंगमंच एवं विश्वविद्यालयी रंगमंच के अभाव की पूर्ति उनके एकांकीयोंने की।एकांकी रचना के पीछे लाल का मूलभूत उद्देश्य दर्शकों को अत्यंत थोडे समय में उसे सहज स्वाभाविक मनोरंजन प्रदान करना था ।

लाल ने कुलमिलाकर सात एकांकी संग्रह प्रकाशित किया जिनमें ...

१) ताजमहल के आँसू (संस्करण १९४५)
२) पर्वत के पिछे (१९५२)
३) नाटक बहुरंगी (१९६१)
४) नाटक बहुरूपी (१९६४)
५) दूसरा दरवाजा (१९७५)
६) खेल नहीं नाटक (१९७८)
७) नया तमाशा (१९८२)

लाल के इन एकांकी संग्रहों में हमे कथ्य और शिल्प के स्तर पर निश्चित विकास यात्रा दिखाई देती है नरनारायण राय लिखते हैं कि - "हिन्दी रंगमंच जो भारतेंदु युग के बाद से ही एक बार फिर नाटक और जीवन से जोड़ने की जिम्मेदारी से कट गया था उसे फिर से एक बार परस्पर सम्बद्ध करने की एक जिम्मेदार कोशिश डॉ. लाल की ओर से की गई है ।" [१] यह सत्य डॉ. लाल की एकांकियों में दिखायी देता हैं ।

लाल ने इन एकांकियों के कथ्यों में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध नारी की पीडा, कुण्ठा, सामाजिक, राजनैतिक, शैक्षणिक एवं सम सामायिक समस्याओं को जहाँ लोकवाचा मिली हैं, वही पर शिल्प के स्तरपर भी यथार्थवादी अयथार्थ-वादी तथा शैली नाट्य को भी प्रस्तुत करती है ।

लाल ने रंगमंच और दर्शक को एक सूत्र में पिरोने का एक अथक, सशक्त एवं प्रामाणिक प्रयास किया है । इसलिए लाल ने कभी सूत्रधार का प्रयोग किया है, तो कभी दर्शक के बीच से नायक को पेश किया है, जो हमें "वसन्त ऋतु" एकांकी में दिखाई देता है ।

१.२.५ नाटककार लाल

डॉ. लाल के सभी रूपों में सबसे अधिक रूप उभरकर सामने आता है, वह हैं नाटककार का । वे सभी आयामों के ज्ञाता होकर भी हमे सर्वप्रथम नाटककार के रूप में नजर आते हैं । उन्होंने शीघ्र से शीघ्र नाटक लिखकर श्रेष्ठ नाटककार बने । डॉ. लाल ने अपनी जीवन-यात्रा में कुलमिलाकर ३१ नाटक लिखे हैं, वे उनका १९५५ में उनका पहला नाटक प्रकाशित हुआ ।

---

१) नरनारायण लाल - "नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल की नाट्य साधना", - पृष्ठ-१७४

और वे लगातार १९८७ तक लिखते गये उनके निम्नलिखित नाटक है -

	नाटक	सं.
१)	अंधाकुआ	१९५५
२)	मादा कैक्टस	१९५९
३)	सुन्दररस	१९५९
४)	तीन आँखोवाली मछली	१९६०
५)	सूखासरोवर	१९६०
६)	दर्पण	१९६१
७)	रक्तकमल	१९६२
८)	रातरानी	१९६२
९)	सुर्यमुख	१९६८
१०)	कलंकी	१९६९
११)	करफ्यू	१९७२
१२)	अब्दुला दीवाना	१९७३
१३)	व्यक्तिगत	१९७५
१४)	नरसिंह कथा	१९७६
१५)	यक्ष प्रश्न	१९७६
१६)	एक सत्य हरिश्चन्द्र	१९७६
१७)	सगुन पंछी	१९७७
१८)	संस्कार ध्वज	१९७६
१९)	नाटक तोता मैना	१९७७
२०)	गंगा माटी	१९७७
२१)	सब रंग मोहभंग	१९७७
२२)	पंचपुरुष	१९७८

	नाटक	सं.
२३)	राम की लड़ाई	१९७९
२४)	कजरीवर	१९८०
२५)	लंका काण्ड	१९८३
२६)	अरुणाकमल एक	१९८४
२७)	गुरू	१९८४
२८)	मन्नू	१९८४
२९)	मिस्टर अभिमन्यु	१९७१
३०)	बलराम की तीर्थयात्रा	१९८४
३१)	कथा विसर्जन	१९८७

लाल ने अपने नाटकों की शिल्पगत विशेषताएँ यह है कि सामाजिक, राष्ट्रीयता की समस्या, राजनैतिक आर्थिक, पौराणिक, ग्रामीण चित्रण, यथार्थवाद, भ्रष्टाचार, गुंडाशाही इन विशेषताओंको लेकर ही इतने सारे नाटकोंको पूरा किया है ।

१.२.७ लाल निर्देशक के रूप में

डॉ. लाल नाटककार, अभिनेता, कहानीकार उपन्यासकार के साथ-साथ वे निर्देशक भी थे।उन्होंने निर्देशक की भूमिका अच्छी तरह से निभाई है । वर्तमान में निर्देशक नाटय प्रस्तुति की रीढ की हड्डी है । निर्देशक एक तरफ अपनी निर्देशन कला द्वारा अभिनेता की अभिनय कला को अभिव्यक्ति देता है तो दुसरी ओर अपनी प्रस्तुतिद्वारा दर्शक को रंगभूमि के रंग के साथ जोडता है,अर्थात वह अभिनेता और दर्शक के बीच का सूत्रधार हैं । आज का निर्देशक तो इस रंगभूमिपर इतना हावी हो गया है कि न केवल नाटक कि प्रस्तुति को अपितु नाटककार को भी अपनी मुट्ठी में बाँधे हुए हैं । लाल कहते हैं कि - "कृति समाज को समर्पित करने बाद वह समाज की हो जाती है, वह

चाहे जैसा उपयोग करे.... नाटक को निर्देशक के हाथों में देकर मैं उससे अलग हो जाता हूँ वह उपयोग किसी भी तरह करे । यह उसका अपना उत्तरदायित्व है और अधिकार भी ।" [१]

निर्देशक की मनचाही छूट लेने की कार्यपद्धति ही उन्हें निर्देशन के कार्यक्षेत्र में खींच लाई और उन्होंने अपने नाटकों के प्राथमिक प्रयोगों का स्वयं निर्देशन भी किया जिसके पीछे उनका दूसरा उद्देश्य दर्शक तक पहुँचने का था। वे अपने नाटक को पहले निर्देशित करते थे और बाद में लिखते थे । नाटककार के लिए निर्देशन कला को जानना आवश्यक है और तब उन्होंने इस कला को जान लिया ।

एक निर्देशक के रूप में अपने अभिनेता के साथ पूर्णत: आत्मसात हो जाते थे और उसे मार्गदर्शन भी करते थे । उसे बार-बार समझाते थे । उन्होंने "रक्तकमल", "करफ्यु", "कलंकी", "यक्षप्रश्न", "व्यक्तिगत", "अँधाकुआँ", आदि अपने नाटकों को निर्देशन किया ।

निष्कर्ष

निष्कर्षता से हम कह सकते हैं कि डॉ. लाल का व्यक्तित्व एवं कृतित्व एक अष्ट पैलू खिलाडी की तरह हैं । डॉ. लाल बहुमुखी प्रतिभा के द्योतक रहे हैं । गाँव के संघर्ष के कारण वे अपने जीवनभर संघर्ष की प्रेरणा एवं निरन्तर एक संघर्षशील व्यक्तित्व के धनी रहें । उनके पूरे साहित्य में भी संघर्षता उभरकर सामने आती है । वे अपने जीवन में हमेशा देहातीपन को अपने व्यक्तित्व में रखकर साहित्य की यात्रा पूरी की । इसके साथ वे स्पष्ट वक्ता के रूप में नजर आते हैं । जयप्रकाश और म. गांधी की विचारधारा से प्रभावित हुए । डॉ. लाल ने अपने परिवार, गाँव, राष्ट्र और अपनी मिट्टी से जी-जान से प्यार किया । जिसकी गंध उनके साहित्य में दिखायी देती हैं ।

---

१) जयदेव तनेजा - समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच - पृष्ठ १६२.

रचनाकार के रूप में लाल का साहित्य-सृजन विकासशील एवं प्रयोगशील दिखायी देता है । हिन्दी साहित्य के रिक्त सागर को भरने के लिए चारों ओर लाल टूट पड़े हैं । इस सागर को भरने के लिए उन्होंने नाटक विधा, उपन्यास विधा, कहानी विधा, एकांकी विधा और जीवनी इन साहित्य की निर्मिती की । इसके साथ ही अपना राजनैतिक चिन्तन, धार्मिक चिन्तन भी स्पष्ट रूप से दिया है । लाल की रचना में शीघ्रता का गुण अधिक दिखाई देता है । इसलिए श्रेष्ठ रचना बनते बनते इनके हाथों से छूट जाती है । हम यह बात मानते हैं कि प्रेमचंद की तरह उपन्यासकार, कहानीकार नहीं बन सके । फिर भी अपने उपन्यास "बया का घोंसला और साँप", "रूपाजीवा", "प्रेम एक अपवित्रनदी", "गली अनारकली" ऐसे उपन्यास हैं जो एक श्रेष्ठ उपन्यास-कार के रूप में ला बिठाते हैं । इसीप्रकार "द्रोपदी, गोरा पार्वती", "सरजू तट का पपीहा", "थाना पेलूगंज" तथा"डोका डोकी दंतकथा" जैसी कुछ कहानियाँ भी उन्हें एक सफल कहानीकार के रूप में लाती हैं । इसके साथ "जयप्रकाश", "अन्धकार में एक प्रकाश : जयप्रकाश" तथा "स्वराज्य और घनश्यामदास" जीवन चरित्र लिखकर वे एक सफल जीवनीकार भी बने तो निर्मूल वृक्ष का फल" तथा "आधीरात से सुबह तक" ग्रंथो में उनका राजनैतिक चिन्तन उभरकर आता है ।

डॉ. लाल सबसे ज्यादा सशक्त रूप नाटककार का है।इसके साथ ही एक कुशल अभिनेता सफल निर्देशक, दर्शक, समीक्षक का रूप हमारे सामने आता है । उन्होंने अपने नाटकों को रंगमंचीय नाटक बनाया, समयपर उनेक यथार्थवादी, मुक्ताकाशी, प्रतीकात्मक मिथकीय, लीलानाटय तथा रंगभूमि के नाटक आदि अनेक प्रयोग किए । उनमें कहीं कमी नहीं दिखाई देती तो उनके कथ्य एवं शिल्प में परिवर्तन भी किए । परंतु रंगभूमि विहित नाटक कोई नाटक नहीं, रंगभूमि से अलग होकर नाटक लिखा तो जा सकता है, परंतु रचा नहीं जा सकता यह सिध्द किया ।

सृजन पक्ष की अपेक्षा उनका रंगदर्शन अधिक सशक्त बलवत्तर एवं सराहनीय रहा । रचनाकार लक्ष्मीनारायण लाल की इस रंगयात्रा का रंग-दर्शन वास्तव में एक तरफ अगर रंगमंच से रंगभूमि का है तो दूसरी ओर रंगकर्मी से रंगयोगी का भी है ।

.....